बदलाव लोकशक्ति से संभव

हम सभी लोग संभवत: इस बात से सहमत होंगे कि इस समय संविधान की आत्मा के अनुसार काम नहीं हो रहे हैं। राजनीति से जुड़े लोग अपने दल या अपने स्वार्थ को नियमों या अनियमों की परिधि में पूरा करने में ही देश और लोगों का हित अनुभव कर रहे हैं। यह केवल किसी दल विशेष पर लागू नहीं है। सभी दलों की मानसिकता इसी तरह की बन चुकी है। प्रशासन में जो लोग हैं वे भी नियमों का अपनी व्याख्या के अनुसार अपने हितों या अपनों के हितों के लिए उपयोग कर रहे हैं। न्यायपालिका का न्याय न तो समय पर हो पा रहा है और न ही सामान्य या असमर्थ व्यक्ति तक उसकी पहुंच आसान है। महँगे न्याय का लाभ वे लोग अधिक आसानी से उठा पा रहे हैं, जो समर्थ हैं। यह भी लोग जानते हैं कि व्याख्या और सबूत कौन, किस आसानी से अपने पक्ष में करने में समर्थ है। संविधान के अन्तर्गत जिस बराबरी के आधार पर बुनियादी सुविधायें यानी जीवन को बेहतर और सुखी बनाने वाली सुविधायें चाहिये, वे उपलब्ध नहीं हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, आदि सब की पहुंच आर्थिक सम्पन्न लोगों तक आसान है। इस सबका मिला जुला परिणाम है कि सभी जगह सभी लोग नियमों की परिधि से बाहर जाकर कमाई करने में जुटे हुए हैं। यह सब लोकतंत्र और उसके लिए स्वीकार किये गये संविधान की आत्मा के विपरीत है, इसे सभी की आत्माऐं स्वीकार करती हैं।

औसत व्यक्ति अब न तो अपने हक के लिए संघर्ष करना चाहता है और न ही उसे विश्वास है कि उसके संघर्ष का कोई सम्मानजनक हल निकल सकता है। उसकी त्याग, बलिदान, सहयोग, सहकार आदि की भावनायें भी कम से कमतर होती चली गई हैं। लोगों ने इन सब शब्दों को अपने स्वार्थ पर जड़ लिया है। किसी दूसरे को गिराकर आगे बढ़ जाना या किसी के अधिकार को छीन कर अपना हित करना अब कोई अनैतिक नहीं मानता है। गरज यह कि मानवीय मूल्य, मानवीय सरोकार और मानवोचित व्यवहार अपनी जगह छोड़ चुके हैं। कानून, नियम, व्यवस्था सब उनकी मूल मंशा के बजाय उपयोग करने वाले की मंशा से संचालित हो रहे हैं।

इस सबमें बदलाव की बातें भी एक तरह का पाखंड ही हैं। इन स्थितियों में बदलाव आकाश कुसुम या मृग मरीचिका जैसा ही, मुंगेरी लाल का सपना हो चुका है। बदलाव की बातें सब करते हैं, इन संस्थाओं और लोगों के साथ मीडिया भी, पर वह सब या तो अरण्य रुदन है या श्मशानी वैराग्य की तरह है। सब एक दूसरे की तरफ देखते हैं कि वह दूसरा इस तरह के बदलाव को प्रारंभ करे। मीडिया से लगभग सभी इस तरह की प्रेरक आकांक्षाओं की आशाए करते हैं पर उसके इस तरफ उठाये जाने वाले कदमों से असहमति भी व्यक्त करते हैं। मीडिया इन सब विपरीत मार्गों का सहयोगी बन चुका है। वह भी अब अपने को अपनी ऐतिहासिक विरासत का संवाहक नहीं मानता। उसे अब अपने को कारपोरेट व्यवसायी या उद्यमी मानने में अधिक प्रतिष्ठा महसूस होती है। हां वह अब भी अपना सामाजिक चेहरा, समाजसेवी का, चढ़ाये रखना चाहता है और अपने को लोक सेवक कहलाते हुए उसके लाभ भी लेने की इच्छा रखता हैं।

जो लोग बदलाव की प्रक्रिया को जानते हैं, जिन्होंने अनुभव किया है या बदलावों का अध्ययन किया है, वे समझते हैं कि जो भी सत्ता या सुविधाओं का सुख भोग रहा है वह चाहे जितना गाल बजाये पर उसकी मंशा अपने सुख या सत्ता की परिधि के भीतर ही रहती है। इस नजरिये से संविधान के तीनों निकाय, बाजार की ताकतें, इन तीनों निकायों के संलग्नक, कभी भी उस बदलाव की प्रक्रिया में शामिल नहीं होंगे जो आम व्यक्ति को सुख, हक और सत्ता देने के लिए होगी। वे बातें तो करेंगे पर बदलाव की बाधा भी बनेंगे। यह लोग और बदलाव की प्रक्रिया को जानने वाले समझते हैं कि राजनीति के प्राण लोगों में बसे होते हैं। लोग ही उनको सत्ता देते और लोग ही उनको सत्ता से उतारते हैं। प्रशासन और न्याय के लोग सत्ता से प्रभावित होते हैं। बाजार भी सत्ता से प्रभावित होता है। प्रशासन और न्याय नियमों की परिधि से सीमित भी होते हैं। लोग सीधे-सीधे इनको प्रभावित नहीं कर पाते हैं। पर अब भी मीडिया लोगों को प्रेरित करने की क्षमता रखता है। लोगों का उसपर विश्वास भी है। वह चाहे तो लोगों को जागरुक करके राजनीति, बाजार और सत्ता के बारे लोगों को इस तरह से व्यवहार करने के लिए प्रेरित कर सकता है, जिससे वे सभी लोकहित में सोचने और करने के लिए बाध्य हो जायें। यह सभी लोक शक्ति से अपने-अपने को नियमों की उस परिधि में बांधने के लिए बाध्य होगें जो उनके स्वार्थ की बजाय लोगों के हितों का ध्यान रखने के लिए बाध्यकारी होगी।

****